IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882
INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आचार्य चाणक्य के शिक्षा दर्शन की अनुशासन, गुरू शिष्य सम्बन्ध एंव पाठ्यक्रम के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

Dr. Ram Lakhan Yadav (Assistant Professor)
Department of Education
L.M.S. Degree College, Sakit, Etah, Uttar Pradesh, India

सारांश–

प्रस्तुत शोध पत्र में चाणक्य के शिक्षा दर्शन में वर्णित पाठ्यक्रम एवं शिक्षण–विधियों को यदि शिक्षा व्यवस्था में शामिल किया जाये तो इससे शिक्षा व्यवस्था में गुणात्मक सुधार होगा। आचार्य चाणक्य के शिक्षा के स्वरूप के आधार पर वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली के स्वरूप को निर्धारित किया जा सकता है, ऐसा करने पर शिक्षा प्रणाली के द्वारा व्यक्ति विशेष में नैतिकता, नवीनता, अनुशासन, गरू–शिष्य सम्बन्ध, चरित्र निर्माण तथा उद्यमशीलता के कौशलों के विकास के नये आयाम स्थापित किये जा सकते है।

प्रस्तावना

आचार्य चाणक्य ने भारतीय इतिहास में एक क्रान्तिकारी कदम उठाकर इतिहास को सही दिशा दिखायी। भारतीय राज्य छिन्न–भिन्न होकर अनेक इकाईयों में विभक्त हो चुके थे। आचार्य चाणक्य एक महान विचारक थे उनके मस्तिष्क में उन छोटे–छोटे राज्यों को एक विशाल राज्य के रूप में किसी शक्तिशाली सम्राट के हाथों स्थापित करने का विचार था। नन्द राजाओं की निरंकुश राज्य व्यवस्था से प्रजा पीड़ित हो चुकी थी। ऐसे अवसर का भारतीय विचारक ने लाभ उठाया और एक विशाल सामाज्य के रूप में राष्ट्रीय एकता स्थापित की।[1]

आचार्य चाणक्य मगध के निवासी थे। मगध भारतीय इतिहास का एक सुपरिचित अति प्राचीन नाम है। वेदों से लेकर पुराणों तक सर्वत्र मगध भूमि और मगध वंश की चर्चाऐं उल्लिखित है। मगध की शासन परम्परा में नन्दवंश और मौर्य साम्राज्य की प्रतिष्ठा का ऐतिहासिक अध्ययन करने के लिए चाणक्य के जीवन की बात सामने आती है। वन्द्योपाध्याय के अनुसार ''महाकाव्यों तथा पुराणों के पुरूषों के बाद भारतीयों का अन्य नाम से इतना परिचय नहीं है जितना कि चाणक्य के नाम से। सम्पूर्ण भारत में अध्ययन आरम्भ करने वालों को अभी तक उनके नाम से सम्बन्धित नीतियाँ सिखायी जाती हैं।'' [2]

चाणक्य को कौटिल्य तथा विष्णुगुप्त भी कहा जाता है। अर्थशास्त्र के रचयिता ने अपना नाम कौटिल्य बताया है जिसका अर्थ कुटिलता से है। गणपति शास्त्री ने उनका नाम कौटिल्य बताया है जिसका अर्थ है–कूटल गोत्र का वंशज।[3] इस विषय में देवदत्त शास्त्री का मत इस प्रकार है–कूट अर्थात् अन्न से भरे हुए वर्तन को कूटल कहते हैं– जो ब्राह्मण वर्ष भर के अनाज को बर्तन में भर कर संचित करते हैं, उन्हें कूटल कहा जाता है। कदाचित् चाणक्य के पूर्वज भी इसी वृत्ति से आजीविका चलाते रहे होंगे इसलिए उनके कुल में उत्पन्न होने के कारण चाणक्य कौटिल्य कहलाये।

विद्यार्थी जीवनः–

प्राचीन भारत में संस्कृति और शिक्षा का केन्द्र 'तक्षशिला' गान्धार प्रान्त की राजधानी थी। तक्षशिला के विषय में रामायण में वर्णन मिलता है कि भरत ने इसको पुत्र तक्ष के नाम पर बसाया था। तक्षशिला में ऐसे विद्वान थे जो अपने विषय पर पूर्ण ज्ञान तथा अधिकार रखते थे। इनके संरक्षण में ही विद्यार्थी विषय–विशेष की विशेषीकृत शिक्षा ग्रहण किया करते थे। व्याकरण–पितामह पाणिनि, चिकित्सा शास्त्र के प्रसिद्ध वेत्ता जीवक ने यहीं से शिक्षा पायी थी। अर्थशास्त्र के लेखक तथा प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चाणक्य ने इसी विश्वविद्यालय से राजनीति में स्नातक के साथ–साथ उपनिषद्, व्याकरण, शस्त्रविद्या, दर्शनशास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, रसायन शास्त्र इत्यादि का पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त किया।

आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार भी ऐसा ही वर्णन आता है बाल्यकाल में पिता की मृत्यु के पश्चात् विष्णुगुप्त का भरण–पोषण उनकी माता ने किया। उन्होंने तक्षशिला में अनेक ग्रंथों का अध्ययन किया और विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया। इससे वह अल्पकाल में ही त्रिवेद–ज्ञाता, शास्त्र पारंगत, मंत्र–विद्या विशेषज्ञ, नीति पुराण राजनीतिज्ञ, प्रगाढ़ कूटनीति ज्ञाता, विविध विद्याओं के महापंडित और दार्शनिक बन गये।[6]

चाणक्य के प्रथम गुरू राधामोहन स्वामी तथा विश्वविद्यालय के गुरू पुण्डरीकाक्ष, कुलपति शान्तानन्द थे। आचार्य चाणक्य अपने प्रौढ़ ज्ञान के प्रभाव से वहाँ के विद्वानों को प्रसन्न कर राजनीति के प्राध्यापक भी बने।

आचार्य चाणक्य केवल राजनीतिशास्त्र के ही पण्डित नहीं थे, अपितु दर्शनशास्त्र और कामशास्त्र पर भी उनका अधिकार था। 'चाणक्य के अनेक नामों में एक नाम वात्स्यायन भी हैं, तथा कामशास्त्र के रचियता का नाम वात्स्यायन बहुत प्रसिद्ध है। [7] शोध द्वारा मालूम होता है कि प्राचीन भारतीय केवल अध्यात्म विद्या के चिन्तन में ही तत्पर रहे और उन्होंने इहलौकिक ज्ञान–विज्ञान की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। दर्शन और पारलौकिक चिन्तन के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत से ग्रंथ लिखे, परन्तु राज्य शासन और राजनीति जैसे विषयों की सदा उपेक्षा की। [8] परन्तु अकेले अर्थशास्त्र में न केवल राजनीति सम्बन्धी सिद्धांतों का ही विशद् रूप से प्रतिपादन किया गया है, अपितु साथ ही शासन प्रबन्ध का भी उसमें विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। चाणक्य के अर्थशास्त्र में 15 भाग, 180 उपभाग तथा लगभग 6000 श्लोक हैं।

समस्या का औचित्य

शिक्षा समाज को बदलने में पूर्ण सामर्थ्य रखती है। किसी भी समाज अथवा देश में शासकीय प्रणाली चाहे साम्यवादी हो, समाजवादी या प्रजातांत्रिक हो, सर्वप्रथम अपने प्रभाव को अमिट बनाने के शिक्षा के स्वरूप पर ध्यान होता है, आचार्य चाणक्य ने विभिन्न क्षेत्रों में अपना अनुपम योगदान दिया। आचार्य के इस पक्ष को देखते हुए विभिन्न शोधार्थियों ने कुछ शोध कार्य किये जो निम्न प्रकार है :–

- चाणक्य ने अपनी कृतियों में गुरू शिष्य सम्बन्ध, अनुशासन एवं पाठ्यक्रम के बारे में क्या विचार प्रस्तुत किये हैं?
- आचार्य चाणक्य द्वारा दिये गये शैक्षिक विचारों की वर्तमान समय में क्या प्रासंगिकता है।

समस्या कथन:–

"आचार्य चाणक्य के शिक्षा दर्शन की अनुशासन, गुरू शिष्य सम्बन्ध एंव पाठ्यक्रम के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता"

शोध उद्देश्य:–

- आचार्य चाणक्य के शिक्षा दर्शन में पाठ्यक्रम की अवधारणा का अध्ययन करना।
- आचार्य चाणक्य की शिक्षण विधियों का अध्ययन करना।
- आचार्य द्वारा दिये गये गुरू–शिष्य के सम्बन्धों का अध्ययन करना।

शोध प्रारूप

शोधकार्य की प्रकृति को देखते हुए शोधार्थी ने अपने शोध कार्य में ऐतिहासिक शोध विधि एवं पाठ्यवस्तु विश्लेषण का प्रयोग किया गया है।

शोध अध्ययन की विधि एवं स्रोत

अतः शोधकार्य की प्रकृति को देखते हुए शोधार्थी ने अपने शोध कार्य में ऐतिहासिक शोध विधि एवं पाठ्यवस्तु विश्लेषण का प्रयोग किया गया है।

यह अध्ययन विभिन्न स्रोतों पर आधारित है।

1. प्राथमिक स्रोत

वे स्रोत जो मूल रूप से आचार्य चाणक्य द्वारा रचित साहित्य है इसके अन्तर्गत हम चाणक्य पर आधारित शोध पत्रिकाऐं, सम–सामयिक पत्रिकाऐं, सम्मेलन या कार्यगोष्ठी की कार्यवाही, उपलब्ध साहित्य ग्रंथ, एक ही विषय पर निबन्ध पत्रिकाऐं तथा शिक्षा प्रकाशन का उपयोग किया है।

2. द्वितीयक स्रोत

द्वितीयक स्रोत के अन्तर्गत शिक्षा का विश्व ज्ञान कोष, शिक्षा सूची पत्र, शिक्षासार तथा संदर्भग्रंथ सूची का उपयोग किया गया है।

3. गौण स्रोत गौण स्रोत के अन्तर्गत वह साहित्य सम्मलित है जो पत्र–पत्रिकाओं में समीक्षा एवं लेख के रूप में प्रकाशित है। इसमें आचार्य चाणक्य पर लिखी गयी विभिन्न विद्वानों की पुस्तकें सम्मलित है।

4. उद्धरण स्रोत

इसके अन्तर्गत देश–विदेश में सम्बन्धित विषय पर किये गये अध्ययनों का समावेश किया है।
इस शोध कार्य में गुणात्मक विश्लेषण किया गया है।

शोध का सीमांकन :–

किसी भी विस्तृत समस्या को छोटा रूप प्रदान करने के लिए उसके क्षेत्र का परिसीमन करना बहुत जरूरी होता है। यदि समस्या सीमित व स्पष्ट होगी तो उसका अध्ययन भी गहनता से किया जा सकता है। अनुसंधान के वैध, विश्वसनीय एवं उपयोगी परिणामों हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि उसके क्षेत्र को परिसीमित किया जाए। अतः शोधार्थी ने अध्ययन की सुलभता एवं समयाभाव के कारण निम्नाकिंत रूप से, क्षेत्र का परिसीमन किया है।

- शोधकार्य केवल प्राथमिक एवं गौंण स्रोतों से संग्रहीत सूचनाओं पर आधारित है।
- आचार्य चाणक्य के शिक्षा दर्शन का अध्ययन करने के लिए उनके द्वारा लिखित अर्थशास्त्र एवं सम्पूर्ण चाणक्य नीति, कौटिलीय अर्थशास्त्र, नन्दमौर्य साम्राज्य का इतिहास, चाणक्यनीति और जीवन चरित्र, मुद्राराक्षस, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, कौटिल्य आदि पुस्तकों का ही अध्ययन किया गया है।

आचार्य चाणक्य के अनुसार शिक्षा का स्वरूप

प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति का आधार उसकी शिक्षा व्यवस्था है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के निर्माण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि जैसी शिक्षा होती है, वैसा ही राष्ट्र होता है। किसी भी राष्ट्र की परम्परागत चिन्तनशीलता, मननशीलता एवं विचारशीलता का प्रतिबिम्ब उसकी शिक्षा में दृष्टिगोचर होता है। सौभाग्य से भारतीय ऋषियों, मुनियों, सन्तों तथा समाज सुधारकों की विशिष्ट एवं प्रकाशमान परम्परा ने समय–समय पर अपने देश की शिक्षा के लिए बहुत कुछ किया है। ऐसे मनीषियों में आचार्य चाणक्य का नाम अत्यन्त गौरवपूर्ण रूप से स्मरण किया जाता है। जिन्होंने अपने शिक्षा दर्शन के माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र को एकीकृत करने की शिक्षा प्रदान की।

शिक्षा के उद्देश्यः–

शिक्षा पूर्णतः सोद्देश्य प्रक्रिया है इसलिये शिक्षा का प्रत्येक पक्ष अर्थात् अधिगम, अध्याय, मूल्यांकन, निर्देशन, प्रशासन, पर्यवेक्षण आदि उद्देश्य आधारित होते हैं शैक्षिक उद्देश्य उन व्यावहारिक परिवर्तनों से सम्बन्धित होते हैं जो छात्रों मे निश्चित सुनियोजित रूप से पूर्वनियोजित शिक्षण क्रियाओं के माध्यम से लाये जाते हैं। इनका स्वरूप विस्तृत तथा व्यापक होता है और इनकी पृष्ठभूमि दार्शनिक होती है। यह स्पष्ट रूप से शिक्षा प्रक्रिया को दिशा प्रदान करते हैं, इस कारण शिक्षण विधि व अधिगम प्रक्रिया से भी यह प्रत्यक्षतः सम्बन्धित होते हैं।
प्रत्येक मनुष्य अपने कार्यों को एक निश्चित योजना के अनुसार करता है। कार्य आरम्भ करने से पूर्व व्यक्ति उसके उद्देश्यों पर भली प्रकार विचार करता है तथा उन्हें निश्चित कर लेता है। ऐसा न करना 'अंधेरे में छलांग मारने के समान है।' कारण यह है कि उसके कार्यों का परिणाम अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। यही बात शिक्षा के बारे में कही जा सकती है। यदि शिक्षा के उद्देश्य अच्छे और निश्चित हैं, और यदि शिक्षक को उनकी पूर्ण जानकारी है तो वह अपने छात्रों को उद्देश्य प्राप्ति में सहायता देकर उनके जीवन को सफल बना सकता है।

शारीरिक विकास का उद्देश्यः–

शिशु काल में बच्चों की कर्मेन्द्रियों का विकास बहुत तेजी से होता है। बच्चों की इन्द्रियों के विकास के लिए उचित पर्यावरण की आवश्यकता होती है। बच्चों को खुले आकाश के नीचे खुली हवा में खेलने–कूदने, दौड़ने–उछलने के अवसर देने चाहिए इससे उनकी कर्मेन्द्रियों का विकास होता है। ज्ञानेन्द्रियों के विकास के लिए वनस्पति के सम्पर्क में रहना चाहिए। इससे तन्मात्राओं के अनुभव की शक्ति भी विकसित होती हैं। आचार्य चाणक्य बालक के शारीरिक विकास के लिये खुले वातावरण में गुरूकुल आश्रम की शिक्षा व्यवस्था के पक्षधर थे।

बौद्धिक विकास का उद्देश्यः–

बच्चों को उनके शिशुकाल एवं बाल्यकाल में विकास के उचित अवसर देकर बालकों के युवाकाल तक उनकी समस्त शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियों का विकास किया जा सकता है। बालक के बौद्धिक विकास के लिये आचार्य चाणक्य धर्म, तर्कशास्त्र आदि की शिक्षा व्यवस्था करते हैं साथ ही पदार्थ एवं आत्म तत्व के ज्ञान पर भी बल देते हैं। आचार्य चाणक्य बच्चों के बौद्धिक विकास के लिये बालकों की योग्यता, क्षमता एवं रूचि के अनुकूलन विशेष अध्ययन की व्यवस्था भी बताते हैं। आचार्य के मतानुसार यदि बालक का बौद्धिक विकास नहीं होता है तब उसका शास्त्र क्या करेगा।

आध्यात्मिक विकास का उद्देश्यः–

आचार्य चाणक्य का विश्वास है कि मनुष्य की आत्मा सूक्ष्म, अनादि, सर्वज्ञाता और सर्वशक्तिमान है, परन्तु अज्ञानवश प्राणी इसकी अनुभूति नहीं कर पाता। उन्होंने नैतिक एवं चारित्रिक विकास पर बल दिया। आचार्य का मत है कि पूर्ण व्यक्तित्व प्राप्त करने पर ही सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की प्राप्ति होती है। मनुष्य इस संसार की भिन्नता में एकता का आभास करके ही आत्मानुभूति प्राप्त करता है। आत्मानुभूति के पश्चात् ही उसमें उच्च चरित्र का विकास सम्भव है। आचार्य चाणक्य के अनुसार आध्यात्मिक विकास एक दो दिन में प्राप्त नहीं होता इसके लिये जीवन पर्यन्त तपस्या करनी पड़ती है। इसलिये जब मनुष्य का पर्याप्त शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास हो उसके पश्चात् आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होना चाहिए। **जीविकोपार्जन का उद्देश्यः–**

आचार्य चाणक्य का विश्वास था कि धर्म एवं अर्थ के अविरोध में काम की तृप्ति करनी चाहिए, बिना आनन्द का जीवन नहीं बिताना चाहिए। किन्तु आचार्य ने अपनी ही मान्यता के अनुसार अर्थ, अर्थात् जीविकोपार्जन के साधन को ही प्रधानता दी है, क्योंकि अर्थ से ही धर्म एवं कर्म की उत्पत्ति होती है। आचार्य चाणक्य ने जीविकोपार्जन के तीन प्रमुख साधन बताये हैं, कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य। सम्मिलित रूप में तीनों वर्ग वार्ता कहलाते थे। आचार्य ने इसे शिक्षा के अनिवार्य अंग बताया है। जीविका के साधनों में कृषि का महत्व सबसे अधिक है। चाणक्य का विश्वास है कि खानों से तो कोष मात्र भरता है, परन्तु धान्य से कोष तथा कोषागार दोंनो बढ़ते हैं। कृषि की शिक्षा में बालक को तीन प्रकार की जानकारी अनिवार्य है। कृषि की उन्नति के लिये उसे कृषि विज्ञान ज्ञाता से शिक्षित कराना चाहिए। कृषि भूमि की उपयोगिता, सिंचाई की मात्रा आदि का ज्ञान होना चाहिए। बीजों और पौधों को विशेष वैज्ञानिक विधियों से तैयार करने की जानकारी दी जानी चाहिए।

जीविका का दूसरा प्रमुख साधन आचार्य चाणक्य ने पशुपालन बताया। पशुपालन का व्यवसाय राष्ट्रीय उत्पादन के रूप में करने की शिक्षा दी। आचार्य ने पशुपालन को वैज्ञानिक किया है। पशुओं को मनोरंजन का साधन माना गया। धातुओं के परिशोधन के लिये दूध पशुजन्य पदार्थों का भी उपयोग होता है।

आचार्य चाणक्य ने जीविकोपार्जन का तीसरा साधन उद्योग तथा वाणिज्य बताया। धन–समृद्धि प्राप्त करने का यह सर्वोत्तम साधन रहा। कृषि, पशुपालन और उद्योगों से प्राप्त होने वाली वस्तुओं का व्यापार कर धनोपार्जन किया जाता था। व्यापार को जीविका का सर्वोत्तम साधन माना। व्यापार करके व्यक्ति अति समृद्धिशाली होता था। यह धन मूल है परन्तु इसके लिए प्रत्याभूत धन की आवश्यकता है। निर्धन व्यक्ति व्यापार नहीं कर सकता। व्यापार के आधार पर व्यक्ति स्वयं भी समृद्धि को प्राप्त करता है तथा राज्य को भी कर के रूप में प्रभूत धनराशि मिलती है। आचार्य चाणक्य का विश्वास था कि धर्म एवं अर्थ के अविरोध में काम की तृप्ति करनी चाहिए, बिना आनन्द का जीवन नहीं बिताना चाहिए। किन्तु आचार्य ने अपनी ही मान्यता के अनुसार अर्थ, अर्थात् जीविकोपार्जन के साधन को ही प्रधानता दी है, क्योंकि अर्थ से ही धर्म एवं कर्म की उत्पत्ति होती है। आचार्य चाणक्य ने जीविकोपार्जन के तीन प्रमुख साधन बताये हैं, कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य। सम्मिलित रूप में तीनों वर्ग वार्ता कहलाते थे। आचार्य ने इसे शिक्षा के अनिवार्य अंग बताया है। जीविका के साधनों में कृषि का महत्व सबसे अधिक है। चाणक्य का विश्वास है कि खानों से तो कोष मात्र भरता है, परन्तु धान्य से कोष तथा कोषागार दोंनो बढ़ते हैं। कृषि की शिक्षा में बालक को तीन प्रकार की जानकारी अनिवार्य है। कृषि की उन्नति के लिये उसे कृषि विज्ञान ज्ञाता से शिक्षित कराना चाहिए। कृषि भूमि की उपयोगिता, सिंचाई की मात्रा आदि का ज्ञान होना चाहिए। बीजों और पौधों को विशेष वैज्ञानिक विधियों से तैयार करने की जानकारी दी जानी चाहिए।

जीविका का दूसरा प्रमुख साधन आचार्य चाणक्य ने पशुपालन बताया। पशुपालन का व्यवसाय राष्ट्रीय उत्पादन के रूप में करने की शिक्षा दी। आचार्य ने पशुपालन को वैज्ञानिक किया है। पशुओं को मनोरंजन का साधन माना गया। धातुओं के परिशोधन के लिये दूध पशुजन्य पदार्थों का भी उपयोग होता है।

आचार्य चाणक्य ने जीविकोपार्जन का तीसरा साधन उद्योग तथा वाणिज्य बताया। धन–समृद्धि प्राप्त करने का यह सर्वोत्तम साधन रहा। कृषि, पशुपालन और उद्योगों से प्राप्त होने वाली वस्तुओं का व्यापार कर धनोपार्जन किया जाता था। व्यापार को जीविका का सर्वोत्तम साधन माना। व्यापार करके व्यक्ति अति समृद्धिशाली होता था। यह धन मूल है परन्तु इसके लिए प्रत्याभूत धन की आवश्यकता है। निर्धन व्यक्ति व्यापार नहीं कर सकता। व्यापार के आधार पर व्यक्ति स्वयं भी समृद्धि को प्राप्त करता है तथा राज्य को भी कर के रूप में प्रभूत धनराशि मिलती है।

शिक्षा में पाठ्यक्रमः–

प्राचीनकाल में बालक और बालिकाएँ आचार्य कुल में ब्रह्मचर्य से रहा करते थे। प्राचीन शास्त्रों में ब्रह्मचर्य की महिमा बड़े विशद् रूप से लिखी गयी है। अथर्ववेद के अनुसार वह योग्यता प्राप्त कर सकता है जिससे कि वह ब्रह्मचारियों को शिक्षा प्रदान कर सकता है। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके ही मनुष्य तेजोमय ज्ञान को धारण करता है और वह सब देवताओं का अधिवास बन जाता है अर्थात् सब दैवीय गुणों को वह प्राप्त करता है। आचार्य कुल में निवास करते हुए

ब्रह्मचारी या विद्यार्थी तप और साधना का जीवन व्यतीत करते थे और विद्याध्ययन को तत्पर रहा करते थे। इन आचार्य कुलों में विद्यार्थी कौन–सी विद्याएँ पढ़ा करते थे इसका परिज्ञान हमें छन्दोग्य उपनिषद् के सन्दर्भ में मिलता है, जिसमें कि महर्षि सनत्कुमार तथा नारद मुनि का संवाद उल्लिखित है सनत्कुमार के पूछने पर नारद ने उन विद्याओं को गिनाया है जिसका उन्होंने अध्ययन किया था। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, व्याकरण विद्या, पितृविद्या अथवा गणित, दैव विद्या, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, ब्रह्मविद्या, भूत विद्या, नक्षत्र विद्या, सर्प विद्या, देवजन विद्या। इससे स्पष्ट है कि आचार्य कुलों में रहते हुये उस समय के विद्यार्थी वेदशास्त्रों के अतिरिक्त गणित, ज्योतिष, तर्क, व्याकरण, युद्ध विद्या और चिकित्सा आदि का भी अध्ययन किया करते थे। जिन विद्याओं का उल्लेख है उनमें से कुछ का अर्थ स्पष्ट नहीं है। सम्भवतः भूतविद्या पंच महाभूतों के विज्ञान को कहते थे और देवजन विद्या नृत्य और संगीत को। उस काल में छह वेदांगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, और ज्योतिष) तथा चार उपवेदों का भी विकास हो चुका था और यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि आचार्य कुल में निवास करते हुये ब्रह्मचारी इन सबका भी अध्ययन किया करते थे। विद्या का आरम्भ उपनयन संस्कार अर्थात् वेदारम्भ संस्कार द्वारा होता था। देवों और पितरों द्वारा जिन विद्याओं का विकास किया जा चुका था, उन्हीं की शिक्षा ग्रहण करने के लिए ब्रह्मचारी आचार्य कुल में प्रवेश किया करता था।

आचार्य चाणक्य के अनुसार शिक्षा के पाठ्यक्रम में तीन विद्याएं दण्ड पर आधारित हैं और दण्ड सहज एवं अर्जित नामक दो प्रकार के अनुशासन पर निर्भर रहता है। विद्याओं से अर्जित ज्ञान से अनुशासन की प्राप्ति होती है आचार्य के अनुसार चौलकर्म के उपरान्त राजकुमार को लिखने एवं अंकगणित का ज्ञान कराना चाहिए, उपनयन के उपरान्त शिष्य को शिष्ट आचार्यों द्वारा वेद एवं आन्वीक्षिकी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। विभिन्न विभागों के अधीक्षकों से वार्ता, व्यवहारिक राजनतिज्ञों एवं व्याख्याताओं से दण्डनीति की अध्ययन करना चाहिए।

आचार्य चाणक्य के विद्यापीठ में कौन–कौन सी विद्याएँ पढ़ायी जाती थी इनका निर्देश कोटिलीय अर्थशास्त्र में विद्यमान है– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, त्रयी कहलाते हैं तथा अथर्ववेद का प्रयोग तंत्र–मंत्र विद्या में किया गया है। चाणक्य वेदादि के अध्ययन एवं श्रवण पर बल देते हुए कहते हैं कि–

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्।।

चाणक्य का विश्वास है कि व्यक्ति वेद शास्त्रों के अध्ययन के अतिरिक्त उन्हें सुनकर भी उनसे लाभ उठा सकता है। उनका कहना है कि वेद आदि शास्त्रों के सुनने से व्यक्ति धर्म के रहस्य को समझ सकता है और विद्वान व्यक्तियों की अच्छी बातें, अच्छे उपदेश सुनकर अपने बुरे विचारों को त्याग सकता है। शास्त्रों के सुनने से ही मनुष्य संसार के बन्धनों के मोह मायाजाल से छूटकर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। संसार में अनेक उदाहरण हैं जो विद्वान लोगों की बातें सुनकर ही श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर सके। अतः सुनने का महत्व कम नहीं है।

आत्मबल की महत्ताः–

चाणक्य कहते हैं कि पाठ्यक्रम ऐसा हो जो विद्यार्थी में आत्मबल का विकास कर सके। उन्हीं के शब्दों में–

नाऽस्ति मेघसमं तोयं नाऽस्ति चात्मसमं बलम्।
नाऽस्ति चक्षुःसमं तेजो नाऽस्ति धान्यसमं प्रियम्।।

मेघ के जल को सबसे अधिक पवित्र इसलिये माना जाता है कि वह स्वास्थ्यवर्धक होता है। जिस व्यक्ति में आत्मा का बल है अर्थात् जिसमें हिम्मत है उसे किसी और बल की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि आत्मबल शरीर और इन्द्रियों के बल से भी बढ़कर है। चाणक्य ने नेत्र की ज्योति को सबसे अधिक उपयोगी माना है। सत्य ही है क्योंकि नेत्र की ज्योति के बिना मनुष्य के लिए सारा संसार अंधकारमय होता है। इसी प्रकार अन्न भी मनुष्य के लिए सबसे अधिक प्रिय पदार्थ कहा गया है, मनुष्य अन्य छप्पन प्रकार के भोजन करता रहे परन्तु उसमें यदि अन्न का अंश नहीं हो तो उससे उसकी तृप्ति नहीं होती। इसलिये अन्न को मनुष्य के लिए सबसे अधिक प्रिय पदार्थ कहा गया है।

आचार्य चाणक्य के अनुसार– पाठ्यक्रम ऐसा हो जो छात्र की बुद्धि की तीव्रता बढ़ाये–

''बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निबुद्धेश्च कुतो बलम्''

अर्थात

जिसके पास बुद्धि है उसके पास बल है, सचमुच बुद्धिहीन के पास बल कहाँ हो सकता है। पाठ्यक्रम में ऐसे विषय सम्मिलित किये जायें जिससे व्यावसायिक क्षमता का विकास हो क्योंकि व्यावहारिक जीवन में धन का बहुत महत्व है

गुरू–शिष्य सम्बन्धः–

सम्पूर्ण विश्व में आज भी भारतवर्ष की छवि आध्यात्मिक गुरू के रूप में स्वीकार की जाती है। भारतीय संस्कृति में गुरू का महत्व तथा आवश्यकता के सम्बन्ध में जितना उल्लेख किया गया है, उतना अन्य किसी देश के साहित्य अथवा संस्कृति में नहीं मिलता। मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र हो, उसमें पारंगतता प्राप्त करने के लिये किसी ऐसे व्यक्ति की

खोज करनी पड़ती है जो इस क्षेत्र में पूर्ण ज्ञान रखता हो। यह पूर्ण ज्ञानी केवल गुरू ही होता है। गुरू ही साधारण व्यक्तियों को अज्ञानान्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में द्विमुखी शिक्षा के अन्तर्गत गुरू और शिष्य को ही महत्व दिया जाता है किन्तु शिष्य तो गुरू के अभाव में अज्ञानी रह जायेंगे। गुरू की अनुपस्थिति में सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था हास्यास्पद तथा कोरी प्रवंचना ही रह जायेगी। इसी प्रकार अध्यात्म, दर्शन, जन्त्र, मंत्र, शास्त्र, अर्थ, धर्म तथा अनेक भौतिक विद्याओं के क्षेत्र गुरू के बिना सूने तथा निरर्थक समझे जायेंगे, शिष्य को गुरू के प्रति श्रद्धा, आस्था, विश्वास, प्रेम त्याग आदि होना चाहिए जो उसे अभीष्ट फल की प्राप्ति कराने में सहायक होता है। गुरू अपनी मनः स्थित से ही शिष्य की मनः स्थिति का पोषण करता है।

चाणक्य के अनुसार गुरू सच्चा मार्ग दर्शक होता है, बिना गुरू के कोई भी अपने लक्ष्य को सफलता पूर्वक प्राप्त नहीं कर सकता। गुरू गूढ़ रहस्यों को सुलझा देता है। केवल पुस्तकें पढ़कर ही सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। ज्ञान के व्यावहारिक उपयोग के लिये गुरू का मार्ग दर्शन अनिवार्य होता है।

चाणक्य कहते हैं–

यथा खात्वा खनित्रेण भूतले वारि विन्दति।
तथा गुरूगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति।।
अर्थात्

''जिस प्रकार जमींन खोदता हुआ मनुष्य पानी को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार गुरू की सेवा वाला शिष्य गुरू की विद्या को भी प्राप्त कर लेता है।'' ज्ञान को प्राप्त करने के लिये गुरू की अनिवार्य आवश्यकता है। शिष्य को चाहिए कि वह समित्पाणि होकर गुरू की सेवा में उपस्थित हो। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में गुरू और शिष्य का सम्बन्ध अति पवित्र माना गया है। यह गौरवपूर्ण और मधुर है। आचार्य शिष्यों के प्रति स्नेह रखते हैं और उनको सब प्रकार से योग्य बनाने का प्रयत्न करते हैं। आचार्य की सेवा करना और उनके आदेशों का पालन करना शिष्य भी अपना कर्तव्य समझते हैं। शिक्षण के क्षेत्र में आचार्य को पितातुल्य समझा जाता है। उत्तराधिकार में वे अपना समस्त ज्ञान शिष्यों को देते हैं। वे गुरू के सम्मान में कहते हैं कि–

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरूं नाभिवन्दति।
स्वानयोनिशतं भुक्त्वा चाण्डालेष्वभिजायते।।
अर्थात्

जो मनुष्य थोड़े से भी दान देने वाले अथवा अद्वितीय तथा अविनाशी परमेश्वर का ज्ञान देने वाले गुरू का मान सम्मान नहीं करता, उसे प्रणाम नहीं करता, वह सौ बार कुत्ता का जन्म भोगकर अन्त में चाण्डाल परिवार में उत्पन्न होता है।

शिक्षण विधियाँः–

भारतीय शिक्षा की मुख्य विशेषताएँ सादा जीवन, उच्च विचार, भ्रातृत्व, समता, विश्वबन्धुत्व की भावना, गौसेवा, परोपकार–परायण, लोक संग्रही प्रवृत्ति तथा सार्वभौम सत्ता की सर्वदा प्रतीति आदि है। छात्र अपनी छात्रावस्था में नैसर्गिक सौन्दर्य से सुरक्षित, जनपद कोलाहल से दूर, प्रकृति की सुरम्य कक्ष में स्थित गुरूकुल में रहकर आचार्य का अन्तेवासी होकर उपर्युक्त शिक्षा को सैद्धांतिक रूप में ही नहीं, अपितु व्यवहारिक रूप में भी प्राप्त करता था।

आचार्य अपने स्वभाव से सदैव छात्र के मन को तो आकृष्ट करते ही थे, साथ ही उसकी प्रत्येक गतिविधि, पर भी पूर्ण ध्यान देते थे उस समय के माता–पिता आचार्य के सौजन्य के प्रति पूर्ण रूप से आस्थावान थे। छात्र तथा आचार्य का मानसिक सम्बन्ध इतना दृढ़ होता था कि छात्र गुरू के आदेशों के अतिरिक्त अन्य किसी के ऊँगली उठाने की चिन्ता नहीं करता था उसके लिये आचार्य की आज्ञा ही सर्वोपरि थी।

भारतीय मनीषियों ने मनुष्य के चरित्र निर्माण में शिक्षा को बहुत महत्व दिया इसके लिये विशेष–प्रणाली और शिक्षा की योजना प्राचीन काल में की गयी थी। योग्य गुरूओं की सेवा में रहकर, ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये विद्यार्थी, जिसको कि ब्रह्मचारी कहा जाता था, इन शिक्षालयों में शिक्षा प्राप्त करते थे। ब्रह्मचारी के लिए अनिवार्य था कि वह निषिद्ध वस्तुओं का उपयोग न करे। ब्रह्मचारी को क्षमाशील, जितेन्द्रिय, विनयी, परिश्रमी, कर्तव्यपरायण और क्रोध रहित होना चाहिए।

शिक्षा में अनुशासनः–

अनुशासन मनुष्य के जीवन यापन का एक आवश्यक अंग हैं शिक्षा रूपी वृक्ष की जड़े अनुशासन है, वेद उनकी शाखाएँ हैं, धर्म, अनुष्ठान उसकी पत्तियाँ हैं। अतः प्रयत्न पूर्वक जड़ की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि जड़ के कट जाने से पूरे वृक्ष का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। अनुशासन की अवधारणा की पृष्ठभूमि का अध्ययन करने पर पता चलता है कि समय की राजनीतिक, धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा के साथ–साथ अनुशासन पर आधारित होती है। एक काल या

स्थिति में किसी राष्ट्र के जीवन में अनुशासन का महत्व बहुत अधिक है, उसी प्रकार व्यक्ति के जीवन के लिये भी यह अत्यन्त आवश्यक है। विद्यालयों में भी अनुशासन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

चाणक्य के समय में आयोजित दैनिक कार्य छात्रों में स्वतः अनुशासन का समावेश करते थे। छात्र जीवन ब्रह्मचर्यवास था। जिसमें सदाचार की व्यावहारिक शिक्षा मिलती रहती थी। विद्यार्थियों की जीवन धारा कुछ इस ढंग से प्रवाहित होती थी कि आचार तथा अनुशासन सम्बन्धी शिक्षाएँ उनको बिना किसी प्रयास के ही मिल जाती थी। फलतः आजकल की पेचीदी एवं गम्भीर अनुशासन सम्बन्धी समस्याओं का नाम भी नहीं मिलता किन्तु ऐसा नहीं है कि अनुशासन बनाऐ रखने के प्रति वो उदासीन थे। निर्धारित कर्तव्यों की किसी भी रूप में अवहेलना करने वाले छात्रों के लिये उचित दण्ड की व्यवस्था स्मृतिकारों ने की है। ये दण्ड प्रायः आध्यात्मिक होते थे, जैसे उपवास आदि। आध्यात्मिक दण्ड से छात्र अपने अन्तःकरण को शुद्ध करने की प्रेरणा भी ग्रहण करता था। चाणक्य दर्शन में दण्ड व्यवस्था की आधार शिला आत्मसुधार पर आधारित थी। वाह्य दण्डों की अपेक्षा ये दण्ड उपयुक्त थे क्योंकि बाह्यात्मक दण्ड अक्सर आत्म–शुद्धि की अपेक्षा अपराधों की वृद्धि का कारण बन जाते थे।

आचार्य चाणक्य की अनुशासन अवधारणाः–

आचार्य चाणक्य छात्रों के लिये आत्मानुशासन का अनुग्रह करते हैं। बिना आत्मानुशासन के छात्र स्वयं को इन्द्रियजय नहीं बना सकते तथा आत्म संस्कृति को प्राप्त नहीं कर सकते। आत्म संस्कृति से तात्पर्य नैतिक गुणों आत्म सम्मान, आत्म त्याग आदि का अर्जन है। आचार्य चाणक्य शिक्षा के द्वारा राजा को तैयार करते हैं। इसलिये राजा को इन्द्रियजय होना आवश्यक है। इन्द्रियजय से तात्पर्य ब्रह्मचर्य व्रत की आवश्यकता है बिना इसके सत्य व अहिंसा की उपलब्धि सम्भव नहीं। चाणक्य विद्यार्थी को सचेत करते हुए कहते हैं कि–

सुखार्थी चेत् त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी च त्यजेत् सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।।

अर्थात्

जिसे सुख की अभिलाषा हो, उसे विद्या प्राप्ति की आशा छोड़ देनी चाहिए और जिसे विद्या प्राप्ति की इच्छा हो उसे सुख को तिलाञ्जलि दे देनी चाहिए क्योंकि सुख चाहने वालों को विद्या की प्राप्ति नहीं हो सकती और विद्यार्थी को सुख नहीं मिल सकता। चाणक्य विद्यार्थी को घर में आशक्त न होने की सलाह देते हैं–

''गृहाऽऽसक्तस्य नो विद्या''

अर्थात्

घर में आसक्ति, मोह, लगाव रखने वालों को विद्या की प्राप्ति नहीं हो सकती।

अनुशासन अथवा विनय आचार्य चाणक्य के अनुसार दो प्रकार के हैं– स्वाभविक और अर्जित। आरम्भ में राजपुत्र को शिक्षकों से विनय सीखना होता था और बाद में वृद्ध विद्वानों की संगति से। विनय के साथ–साथ राजपुत्र को इन्द्रियजय भी होना आवश्यक था। सब इन्द्रियों का अनुराग काम कहलाता है। कान, ऑख, नाक, जीभ और चर्म ये पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और हाथ, पैर, वाणी आदि पांच कर्मेन्द्रियाँ है। ये दसों इन्द्रियाँ बहिकरण है और मन अन्तः करण है इन इन्द्रियों के वश में न हो जाना, बल्कि इनको अपने वश में रखना इन्द्रि–जय है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के छः शत्रु बताये हैं– काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्ष। आचार्य चाणक्य राजपुत्र की शिक्षा पर बल देते हैं इसलिये राजपुत्र के अनुशासन के लिए बताते हैं कि ये दोष तो साधारण मनुष्य के लिये भी हानिकारक हैं, राजपुत्र के लिये तो ये बड़े दोष हैं। विद्याविनीत और जितेन्द्रिय होने मात्र से ही राज्य करने की योग्यता नहीं आ जाती, राजा को इन छः दोषों के दमन में भी यत्नशील रहना चाहिए। काम से चार दोष या व्यसन उत्पन्न होते हैं। गुणों के विपरीत भाव या गुणों के अभाव का नाम व्यसन है। आचार्य के अनुसार मद्यपान भयंकर है, क्योंकि उससे विवेक बुद्धि नष्ट हो जाती है, परन्तु द्यूत व मद्यपान में द्यूत अधिक भयंकर है क्योंकि इसमें जय–पराजय के दो पक्ष हो जाते हैं और राजकुलों में इसी से भेद उत्पन्न हो जाता है। चाणक्य विद्या के जिज्ञासु को निम्न आठ बातों को छोड़ने की सलाह देते हैं।

कामं क्रोधं तथा लोभं स्वादं श्रृंगारकौतुके।
अतिनिद्राऽतिसेवे च विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत्।।

अर्थात्

विद्यार्थी को चाहिए कि वह काम, क्रोध, लोभ, स्वाद, श्रृंगार, खेल तमासे, बहुत अधिक सोना और अत्यधिक सेवा करना इन आठ बातों को त्याग दे।

उस काल में विद्यार्थियों का जीवन किस प्रकार व्यतीत होता था, जातक कथाओं में इसका वर्णन मिलता है विद्यार्थी अपने आचार्य के निरीक्षण में रहते थे। उनके जीवन के सुधार पर आचार्य बहुत ध्यान देते थे तथा गलती पर अनेक प्रकार के दण्ड भी विद्यार्थियों को दिये जाते थे तक्षशिला में शारीरिक दण्ड भी विद्यार्थियों को मिलता था। तक्षशिला का एक छात्र जिसको चोरी करने की आदत पड़ गयी थी, शारीरिक दण्ड का भोगी बना था। 'तिलमुट्ठि जातक' में लिखा

है, कि एक बार कुमार ब्रह्मदत्त अपने आचार्य चाणक्य के साथ स्नान के लिये जा रहा था। रास्ते में उसने तिल देखे, जो एक वृद्धा स्त्री ने सुखा रखे थे तथा उनकी रखवाली भी कर रही थी, तिलों को देखकर कुमार ब्रह्यदत्त की इच्छा उन्हें खाने की हुयी वह एक मुट्ठी भरकर तिलों को उठाकर खाने लगा। वृद्धा स्त्री ने यह सोचकर कि यह भूखा होगा कुछ न कहा। इस प्रकार कुमार ब्रह्मदत्त आचार्य के साथ अगले दिन भी गये और तीसरे दिन भी उन्होंने यही प्रतिक्रिया की, इस पर वृद्धा को क्रोध आ गया तथा वह चिल्लाकर कहने लगी संसार प्रसिद्ध आचार्य मुझे लुटने दे रहे हैं। इस प्रकार का कथन सुनकर आचार्य ने सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त की तथा उसकी कीमत चुकाने के लिये कहा। वृद्धा ने कहा मैं कीमत नहीं चाहती, इस लड़के को ऐसी शिक्षा दो कि फिर भविष्य में यह ऐसा न करे। आचार्य ने बहुत अच्छा कह कर दो लड़कों को कुमार ब्रह्मदत्त के दोनों हाथ पकड़ लेने का आदेश दिया और स्वयं उसकी पीठ पर तीन डण्डे मारे तथा भविष्य में फिर से ऐसा न करने की शिक्षा दी। इस प्रकार तक्षशिला के विद्या केन्द्रों के आन्तरिक नियंत्रण, अनुशासन का पता चलता है। इसके अतिरिक्त विद्यालयों में शिक्षक और छात्रों के आदर्श सम्बन्ध के कारण विद्यालय का जीवन अनुशासित एवं शान्त होता था।

शोध निष्कर्ष :

- आचार्य चाणक्य ने दण्ड नीति विद्या के महत्व को बताया इसमें उन्होंने दण्ड के मध्यम मार्ग को अपनाने पर बल दिया तथा बताया कि दण्ड का स्वरूप न तो अधिक कठोर हो और न ही अधिक मृदु हो।
- आचार्य चाणक्य ने अपने शिक्षा दर्शन में बताया कि शिक्षा देते समय बालक की आयु के अनुसार व्यवहार करना चाहिए। जैसे पाँच वर्ष तक दुलार करना, दस वर्ष तक ताड़ना और सोलहवां वर्ष आरम्भ होते ही मित्र जैसा व्यवहार करना चाहिए।
- आचार्य के अनुसार बालक के शारीरिक विकास के लिए उसे खुले वातावरण में रहने का अवसर प्रदान करना चाहिए, जिससे उनकी कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों का पूर्णतः विकास हो सके।
- चाणक्य ने माना कि बालक के शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास के उचित सहयोग से आध्यात्मिक विकास सम्भव है जो मानव की श्रेष्ठ उपलब्धि है।
- आचार्य चाणक्य मानते है कि धन के अभाव में व्यक्ति अपनी जीविका व धर्म अच्छी तरह नहीं निभा सकता। अतः शिक्षा का एक उद्देश्य जीविकोपार्जन का होना माना।
- चाणक्य ने शिक्षा में पाठ्यक्रम के बारे में बताते हुए कहा कि पाठ्यक्रम में वेद शास्त्रों के अध्ययन के अतिरिक्त उन्हें सुनकर भी लाभान्वित हो सकते हैं, क्योंकि व्यक्ति अच्छे उपदेश सुनकर बुरे विचारों को त्याग सकता है।
- चाणक्य ने उपनयन संस्कार के बाद वेद एवं न्याय शास्त्र के ज्ञान का प्रावधान रखा।
- आचार्य चाणक्य ने पाठ्यक्रम की विषय वस्तु में शिक्षार्थी को अंकगणित का ज्ञान देने को कहा तथा बताया कि पाठ्यक्रम ऐसा हो जो बुद्धि को तीव्र बनाये।
- पाठ्यक्रम की महत्ता को बताते हुए आचार्य ने कहा कि पाठ्यक्रम ऐसा हो जो शिक्षार्थी का आत्मबल बढ़ाये क्योंकि आत्मबल शरीर एवं इन्द्रियों के बल से भी बढ़कर है।
- चाणक्य ने बताया कि पाठ्यक्रम में ऐसे विषय सम्मिलित किये जायें जिससे व्यावसायिक क्षमता का विकास हो क्योंकि व्यावहारिक जीवन में धन का बहुत महत्व है।
- आचार्य ने पाठ्यक्रम में दर्शन, व्याकरण, राजनीति, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद एवं मन्त्र विद्या आदि पर विशेष बल दिया तथा राजपुत्र को शिक्षित करने के लिए शिक्षा के पाठ्यक्रम में चतुरंग बल विद्या एवं अस्त्र–शस्त्र व्यूह रचना की विशेष शिक्षा पर बल दिया। धर्म–अधर्म एवं कर्तव्यों का भली–भाँति ज्ञान कराने वाली शिक्षा देने वाला हो।

सन्दर्भ सूची :

1. **अर्थशास्त्र ;** गणपति शास्त्री पेज नं0 10–11
2. **मौर्य साम्राज्य का इतिहास ;** सत्यकेतु विद्यालंकार पेज नं0 17
3. **मौर्य साम्राज्य का इतिहास ;** सत्यकेतु विद्यालंकार पेज नं0 27
4. **नीतिसार ;** कामन्दक पेज नं0 7
5. **जैन परिशिष्ट पर्व ;** आचार्य हेमचन्द्र पेज नं0 28
6. **कोठारी, डी0एस0 (1964–66)**, कोठारी आयोग रिपोर्ट ऑन एजूकेशन, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
7. **कौटिल्य ;** एन0सी0 बन्धोपाध्याय पेज नं0 1
8. **कौटलीय अर्थशास्त्र ;** भूमिका, वाचस्पति गौरेला पेज नं0 18
9. **विद्यालंकार, सत्यकेतु (1929)**, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदर मंसूरी।
10. **मुद्राराक्षस ;** विशाखदत्त पेज नं0 24
11. **मुद्राराक्षस ;** विशाखदत्त पेज नं0 3–15
12. **दी रिडिल ऑफ कौटिल्य एण्ड चाणक्य** ; गोविन्दचन्द्र पाण्डेय (जिज्ञासा) पेज नं0 8
13. **धर्मशास्त्र का इतिहास ;** पी0वी0 कांणे पेज नं0 21–23
14. **शास्त्री, टी0 गणपति (1921)**, कौटिल्य अर्थशास्त्र, विद्याभवन वाराणसी।
15. **शिक्षा की दाशर्निक पृष्ठभूमि** : लक्ष्मीलाल के0 ओ0 पेज न0–9
16. **गैरोला, वाचस्पति (1962)**, कोटिलीय अर्थशास्त्रम् चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।
17. **कौटलीय अर्थशास्त्र** : चतुर्थ अध्याय, प्रथम प्रकरण पेज न0–177
18. **लोकवार्ता विज्ञान :** डॉ0 हरद्वारीलाल शर्मा पेज न0–11
19. **भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास** : भीखनलाल आत्रेय पेज न0–68
20. **सम्पूर्ण चाणक्य नीति** :पं0 विष्णुशर्मा अध्याय–3, श्लोक–18, पेज नं0–32
21. **चाणक्य नीति :** अध्याय–3, श्लोक–20, पेज नं0–33
22. **सम्पूर्ण चाणक्य नीति :** पं0 विष्णुशर्मा अध्याय–12, श्लोक–13, पेज नं0–108
23. **चाणक्य नीति :** अध्याय–14, श्लोक–12, पेज नं0–123
24. **चाणक्य नीति :** अध्याय–13, श्लोक–09, पेज नं0–115
25. **नन्द मौर्य युगीन भारत** : डॉ नीलमकण्ठ शास्त्री पेज न0–121
26. **भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास** : विमल चन्द्र पाण्डेय पेज न0–88
27. **भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास** : डॉ भीखनलाल आगेय पेज न0–63
28. **नन्द मौर्य युगीन भारत** : डॉ नीलमकण्ठ शास्त्री पेज न0–107
29. **चाणक्य नीति :** पं0 विष्णुशर्मा अध्याय–5, श्लोक–01, पेज नं0–56
30. **चाणक्य नीति :** पं0 विष्णुशर्मा अध्याय–5, श्लोक–17, पेज नं0–52
31. **चाणक्य नीति :** पं0 विष्णुशर्मा अध्याय–7, श्लोक–15, पेज नं0–69
32. **कौटलीय अर्थशास्त्र :** वाचस्पति गौरेला पेज न0–74
33. **नन्द मौर्य युगीन भारत :** डॉ नीलमकण्ठ शास्त्री पेज न0–37
34. **नन्द मौर्य युगीन भारत :** डॉ नीलकण्ठ शास्त्री पेज न0–42
35. **चाणक्य नीति :** पं0 विष्णुशर्मा अध्याय–13, श्लोक–16, पेज नं0–115
36. **चाणक्य नीति :** पं0 विष्णुशर्मा अध्याय–13, श्लोक–18, पेज नं0–116
37. **चाणक्य नीति :** पं0 विष्णुशर्मा अध्याय–15, श्लोक–02, पेज नं0–128
38. **प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास** : कृष्ण कुमार पेज न0–68
39. **चाणक्य नीति** : पं0 विष्णुशर्मा अध्याय–12, श्लोक–19
40. **चाणक्य नीति** : पं0 विष्णुशर्मा अध्याय–10, श्लोक–03, पेज नं0–87
41. **चाणक्य नीति** : पं0 विष्णुशर्मा अध्याय–11, श्लोक–10, पेज नं0–98
42. **प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन** : सत्यकेतु विद्यालंकार पेज न0–57